# भारतीय ज्ञान परंपरा व संस्कृति संधान

डॉ० संदीप कुमार पाण्डेय, डॉ० आरसी प्रसाद झा
डॉ० जीतेंद्र बी० पटेल

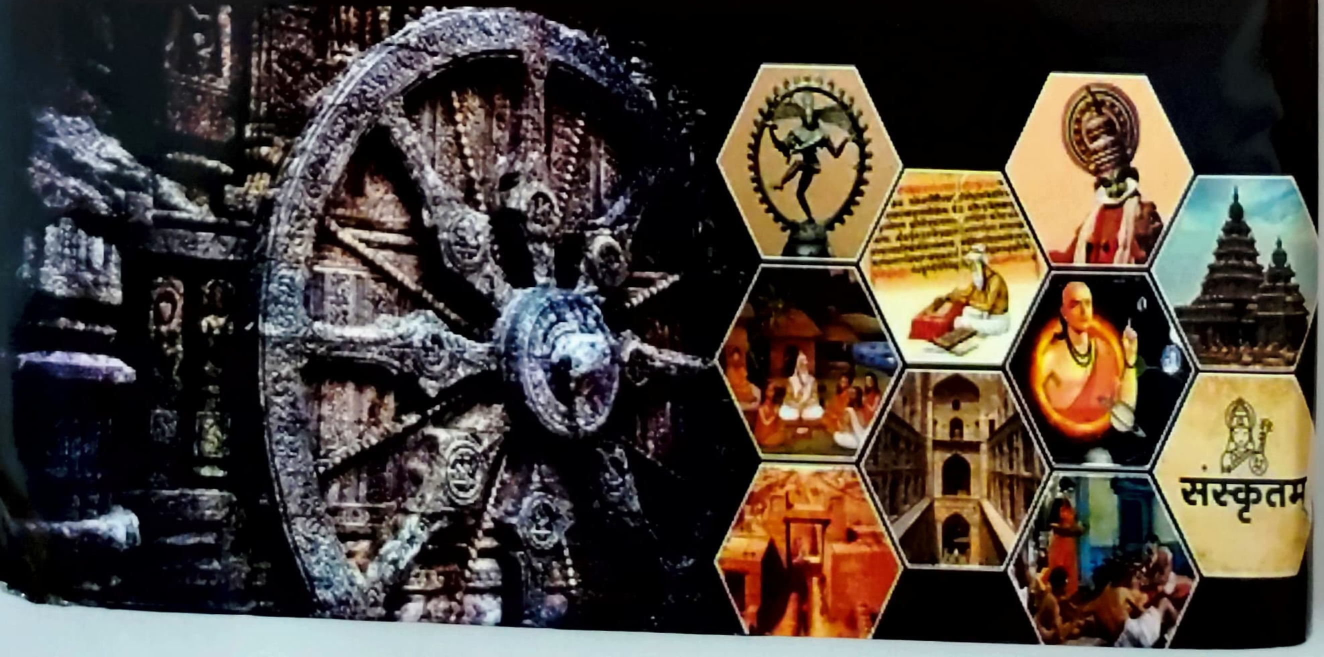

# भारतीय ज्ञान परम्परा
# व
# संस्कृति संधान

सम्पादक

डॉ० संदीप कुमार पाण्डेय

सह-सम्पादक

डॉ० आर०सी० प्रसाद

डॉ० जीतेन्द्र बी० पटेल

समता प्रकाशन

कानपुर (देहात)-209303

### अस्वीकरण

संकल्प प्रकाशन कानपुर द्वारा प्रकाशित लेखों/शोध पत्रों में व्यक्त विचार योगदानकर्ताओं के अपने हैं। वे आवश्यक रूप से संपादक/प्रकाशक के विचारों को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। संपादक/प्रकाशक इन लेखों/शोध पत्रों की सामग्री पाठ से उत्पन्न किसी भी दायित्व के लिए किसी भी तरह से जिम्मेदार नहीं है।

**ISBN 978-93-93403-53-7**

**प्रथम संस्करण, 2024**

**पुस्तक** : भारतीय ज्ञान परम्परा व संस्कृति संधान

**सम्पादक** : डॉ० संदीप कुमार पाण्डेय

**सह-सम्पादक** : डॉ० आर०सी० प्रसाद, डॉ० जीतेन्द्र बी० पटेल

**प्रकाशक** : **समता प्रकाशन**

बजरंगनगर, **रूरा**- कानपुर (देहात) 209303

Mob. : 9450139012, 9936565601

**ई-मेल** : samataprakashanrura@gmail.com

**कॉपीराइट ©** : डॉ. संदीप कुमार पाण्डेय

**मूल्य** : ८००/-

**शब्द-सज्जा** : रुद्र ग्राफिक्स, हनुमन्त विहार, नौबस्ता, कानपुर-21

**आवरण** : गौरव शुक्ल, कानपुर

**मुद्रक** : सार्थक प्रेस, कानपुर

# अनुक्रम


१. भारतीय ज्ञान परम्परा : सांस्कृतिक विविधता

**डॉ० हेमा राम धुंधवाल** ०१

२. भारतीय ज्ञान परम्परा : वनस्पति

**मोहन लाल बैरवा** १३

३. भारतीय ज्ञान परंपरा : संगीत

**डॉ० समीर बी वाघरोडिया** १८

४. भारतीय ज्ञान परम्परा : आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति

**वै० हेमांगी श्रीरंग जोशी** २२

५. भारतीय ज्ञान परम्परा : पंचकर्म

**डॉ० राजेशकुमार ईश्वरभाई भट्ट** ३१

६. भारतीय ज्ञान परंपरा के संवाहक : स्वामी विवेकानंद

**डॉ० अशोक अभिषेक** ४२

७. भारतीय ज्ञान परंपरा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

**नीलम पटेल** ४८

८. स्वार्थ की आग में झुलसते सामाजिक रिश्ते

**डॉ० विशेष गुप्ता** ५५

९. पूर्वोत्तर भारत के लोकसाहित्य में अभिव्यक्त संस्कृति एवं समाज

**डॉ० मोहित मिश्रा** ५८

१०. आलोचना का शुक्ल पक्ष

**डॉ० वेदप्रकाश दुबे** ६६

११. व्यक्तित्व के विकास में साहित्य का योगदान

**डॉ० मैना दुबे** ७५

१२. चरित्र निर्माण में साहित्य की भूमिका

**डॉ० भैरुलाल साँखला** ८०

१३. भाषा और विकास

**अनिता भाटी** ८५

१४. वैशाली जिला के ऐतिहासिक स्थलों का अवलोकन : विशेषकर चेचर ग्राम समूह के संदर्भ में

**प्रिन्स कुमार** ९१

१५. प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था एवं सतत विकास की अवधारणा
**अनीस अहमद खान, मृत्युञ्जय कुमार** ९१

१६. विकलांग व्यक्तियों के जीवन में शिक्षा और रोजगार की भूमिका
**पिंकी गुप्ता** १०४

१७. छत्तीसगढ़ के जनजातियों की संस्कृति एवं जीवनयापन
**रीना कुमारी** ११३

१८. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लाभ एवं हानियां
**डॉ० राम कृपाल** ११७

१९. कुँडुख समाज की परम्पराएँ : दुनियाँ का आकर्षक केन्द्र
**सरिता कुमारी** १२६

२०. विज्ञान प्रौद्योगिकी का बढ़ता अनुप्रयोग भारतीय स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में
**संगीता कुमारी** १३०

२१. भारतीय ज्ञान परम्परा में योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
**मृत्युंजय कुमार, डॉ० बी० एस० गुप्ता** १४२

२२. जनसंख्या वृद्धि एवं लिंगानुपात के सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन
**आरसी प्रसाद झा** १४९

23. Satyam: The Pursuit of Truth and the Role of RTI in Indian Society
**Aishwarya Singh** १५८

24. Environment and Ergonomics
**Tulika A. Khare** १६५

25. Understanding Through Traversing The Corridors of History: Richness of Indian Heritage
**Dr. Om Prakash Kumar** १७६

26. Socio-Culture and Environment in India
**Dr. Uttara Yadav** १८३

# १

# पूर्वोत्तर भारत के लोकसाहित्य में अभिव्यक्त संस्कृति एवं समाज

**डॉ० मोहित मिश्रा**
**सहायक प्राध्यापक**
**आई०एफ०टी०एम० विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ०प्र०)**

प्रकृति की गोद में बसे हुए पूर्वोत्तर भारत को प्रकृति की संतान माना जा सकता है। प्राकृतिक सुंदरता का जो स्वरूप निर्मित है उसका दृश्य देखते ही बनाता है उसकी प्राकृतिक संरचना में पर्वत–पहाड़, नदी–निर्झर, पेड़–पौधों से हरे–भरे प्रांत, पशु–पक्षियों के विचरण क्षेत्र घने जंगल प्राकृतिक संपदाओं से उभरे हुए भू–गर्भ के दृश्य देखे जा सकते हैं, अपने हरे–भरे क्षेत्र एवं वन्यजीवन संरक्षण के कारण किसकी सुंदरता सर्वाधिक आकर्षक हो जाती है। ब्रह्मपुत्र नदी एवं बराक के दोनों तटों पर फैला विशाल असम प्रांत ऐतिहासिक काल से प्रसिद्ध रहा है। दोनों तटों के किनारे जीवन का जो प्रवाह आदिकाल से निरंतर प्रवाहमान है, उसकी संस्कृति उतनी ही विशाल हो गई है। वर्तमान समय में असम प्रांत के निवासियों के दैनिक जीवन लोक–परंपरा, मूल्यों में विशाल ऐतिहासिक जीवन पद्धति के चित्र देखने को मिलते हैं। संपूर्ण विश्व या भारत के लिए यह क्षेत्र सदैव आकर्षण का केंद्र बना रहा है, पूर्वोत्तर की बृहत समाज एवं संस्कृति प्राचीन काल से ही प्रभावशाली मानी जाती रही है, जिसको समझने जानने के लिए अनेक क्षेत्र से लोग ब्रह्मपुत्र तक गंगा घाटी से ३ उधर पश्चिम से मंगोलीय और आस्ट्रिक लोगों के विभिन्न समूह समय–समय पर आकर यहाँ के लोक में रचते बस्ते रहे है, इनका स्वरूप विभिन्न अंचलों में दिखाई देता है फलतः उनके सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का मिश्रित रूप देखने को मिलजते है, जिसका समन्वय अद्भुत समाज का विकास करता है, इसलिए यहाँ के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में जो निवासी निवास करते है उनमें अनेक प्रकार की भिन्नता देखी जा सकती है। असमिया, बड़ो, कछारी, मिरिंग, टिवा, मरान, राभा, करबी, डिमासा आदि।

लोक सांस्कृतिक को जानने के लिए किसी भी जाति के लोकसाहित्य को जानना आवश्यक होता है, जिसमें उस समाज का चित्र उभर कर सामने आता

है लोकसाहित्य में जनमानस के विश्वास, मान्यताएँ, संस्कार, चिंतन, मूल्य, प्रतिक्रियाएँ, परम्पराएँ सस्वर हो उठती हैं। पूर्वोत्तर के समाज की जीवनशैली के द्वारा सांस्कृतिक झांकी का परिचय उसके लोकसाहित्य के माध्यम से उभरता है। वर्तमान समय में भी यहाँ विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, मान्यताएँ एवं प्रथाएँ पूर्ववत प्रचलित हैं, जो यहाँ के लोक साहित्य, लोक परंपराओं से परिलक्षित होती हैं।

लोक साहित्य का प्रस्तुतिकरण लोकमानस के द्वारा सहज भाव से अभिव्यक्त होता है, इसके संपूर्ण अध्ययन से संपूर्ण समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत होता है, जिसका अध्ययन किए बिना किसी देश या जाति की सभ्यता, कला, साहित्य, सामाजिक विकास परंपरा का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। सामाजिक मान्यताओं के द्वारा सामान्य जन के हृदयोद्गार के माध्यम से सामान्य जनता के जीवन का दर्पण माना जा सकता है। भारतीय परिदृश्य में लोक शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यह शब्द संस्कृत की लोक दर्शन धातु धत्र् प्रत्यय जोड़ने से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है देखना, अवलोकन करना। लोक शब्द का एक अर्थ आवैदिक भी है। पाणिनि ने भी वेद से पृथक लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। आचार्य भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में नाटक की लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महाभारत में लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के रूप में किया गया है।

लोक के संदर्भ में जो धारणा बनाई गई है उसका प्रभाव जर्मन विद्वानों ने विसा का सर्वप्रथम उल्लेख किया उससे जोड़ा जाता है। परंतु भारतीय संदर्भ में लोक का प्रभाव व्यापक होता है जिससे ज्ञात होता है कि इतिहास में जो भी सुंदर, तेजस्वी तथ्य है वे लोक में ही सुरक्षित है, हमारी कृषि, हमारी अर्थव्यवस्था, हमारा ज्ञान, साहित्य कला के नाना रूप भाषाएँ एवं शब्दों के भंडार जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत, कथा दसताएँ, आचार–विचार, व्यवहार सभी कुछ भारतीय लोक में ओत–प्रोत है। इस संदर्भ में वसुदेव सरन अग्रवाल की परिभाषा एवं जर्मनी विद्वान द्वारा प्रस्तुत परिभाषा की तुलना प्रस्तुत हुई, जिससे स्पष्ट होता है हमारी लोक की परिभाषा विसा की संकुचित परिभाषा बहुत अधिक व्यापक है, जो संपूर्ण समाज को समग्रता में देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

**मिथक**– मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ शब्द से निर्मित किया गया है हम कह सकते है कि मिथक शब्द हिंदी भाषा में प्रतिरूप बन कर प्रस्तुत हुआ है। मिथ शब्द का उद्भव यूनानी शब्द मिथास से हुआ है जिसका अर्थ है– मुँह से निकला हुआ। अतः इसका प्रयोग मौखिक कथा से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि कथा भी सुनी–सुनाई जाती थी। हिन्दी में मिथक के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं।

मिथक आदिकाल से निरंतर लोक मानस की विकास यात्रा के साथ ही पसारित होते रहे। सरल–सहज शब्दों में मिथकों का संबंध एक कथा–किस्से से जुड़ा होता है, जिसमें सृष्टि और उसके उपकरणों के उद्भव तथा उसकी गतिकिया और उसके अबूझ व्यापार, मूलभूत मानवीय क्रियाओं और समस्याओं, प्रतिरूपों और तत्वों, जीवन–मरण आदि विषयों को लेकर आरंभ काल से ही प्रचलित अनेक धरणाएँ, विश्वास और कर्मकाड प्रचलित हो गए। मिथक को मनुष्य के मानसिक और भौतिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों के कारण समाज में स्थापित होने का स्थान मिला। प्रारम्भिक दौर में मनुष्य ने प्राकृतिक स्वरूप में होने वाले बदलावों से भयभीत होकर जो बचाव के तरीके निकले वे समय के साथ मिथक में बदलते चले गए। आरंभिक मनुष्य की ये कल्पित अतिमानवीय शक्तियाँ कलांतर में मिथक बनकर उभरती हैं। इस प्रकार धार्मिक विश्वास और मिथक में अटूट संबंध स्थापित होता चला गया। मिथक के विकास के पीछे मानव कल्याण और रक्षा का भाव अवश्य निहित था परंतु समाज के विकास की गति में मिथक सत्य का स्वरूप लेते चले गए। लोक साहित्य में मिथक का मिश्रण बहुत ही बारीकी से हुआ है आज इसको लोक से दूर कर पाना एक कठिन कार्य प्रतीत होता है।

किसी भी आंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ उस आंचल के सामाजिक गठन पर निर्भर रहती हैं। प्रकारांतर से समाज के जनसमुदाय का निर्माण करने वाले तत्व जैसे– विभिन्न नस्लें या प्रजातियाँ, उनके विशिष्ट गुण, उनकी आकांक्षाएँ, जातिगत अस्मिता, सचेतना, निष्ठा, आपसी संबंध–संपर्क, उनके धर्म, धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज, उनकी भाषाएँ, भाषिक संस्कृति, लोक विश्वास एवं साहित्य आदि किसी अंचल की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से पूर्वोत्तर के सात राज्य–असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश व मिजोरम की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का अध्याय करने पर हम पाते हैं कि इनमें कुछ विलक्षणताएँ हैं, जो देश की मुख्यधारा में शायद ही देखने को मिलती हों। इन राज्यों में जो मानवीय मूल्य और प्रकृति के साथ तालमेल देखने को मिलता है।

भारत बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश रहा है। इसकी राष्ट्रीय एकता का प्रमुख तत्व है भाषाई अनेकता में एकता। भाषा का सच्चा कार्य लोगों को जोड़ने का होता है तोड़ने का नहीं। वस्तुतः भाषा संस्कृति की संवाहिका है, इसलिए उसकी पहचान भी कही जाती है। दोनों में अपने मूल आधार को सुरक्षित रखकर अपने स्वरूप परिवर्तन की क्षमता होती है। देश में भाषायी परिवारों की विभिन्न भाषाएँ एक वृहद परिवार के रूप में पनपती और विकसित होती रही हैं। देश की वर्तमान स्थिति में विभिन्न परिवारों की भाषाएँ आज की बहुभाषिकता की वास्तविकता है। आर्य परिवार, द्रविड़ परिवार, आस्ट्रिक परिवार, तिब्बती–बर्मी

परिवार उल्लेखनीय हैं। देश में बहुभाषिकता के साथ बहुसांस्कृतिक भी है। यहाँ राष्ट्रीय संस्कृति न एक है न एक हो सकती है, न भाषा एक है और न एक हो सकती है। इसमें बहुलता, बहुवचन के लिए पर्याप्त स्थान प्रारंभ से रहा है। देश में अनेक क्षेत्र, धर्म, भाषा, शैली, रंग–रूप इस बहुलता का सत्यापन करते हैं। हमारी संस्कृति बहुवचन की संस्कृति है। यहाँ एक समान कुछ भी नहीं है। केवल ब्रह्म एक हैं किन्तु उनका स्वरूप त्रिमूर्ति है, तैंतीस कोटि देवी देवता हैं, वेद चार हैं, पुराण अठारह, उपनिषद एक सौ आठ, पारंपरिक दर्शन छः है, धर्मों की संख्या भी कम नहीं है हिंदु, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पारसी, इस्लाम, ईसाई आदि।

असम प्रदेश में सदियों से भिन्न–भिन्न जातियों व प्रजातियों का समागम देखने को मिलता है। वर्तमान स्वरूप में जो भौगोलिक परिवर्तन देखने को मिलता है उससे पहले के अविभाज्य असम में भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भिन्न–भिन्न संरचना दिखाई देती रही है। मेघालय पूर्णतः पहाड़ी राज्य है, जिसमें प्रमुखतः गारो, खासी व जयंतिया तीन प्रमुख जनजातीय रहती हैं। गारो तिब्बती–चीनी परिवार से संबंधित है तो खासी आस्ट्रिक परिवार से संबंध रखती है। दोनों जातियों में भाषिक, सांस्कृतिक व सामाजिक समानता देखने को नहीं मिलती। गारो जनजाति दक्षिण गारो हिल्स पर निवास करती है। खासी जनजाति उत्तर पूर्व क्षेत्र के सबसे बड़े आदिवासी समुदाय के रूप में निवास करते है। यह मेघालय के अलग–अलग हिल्स पर निवास करते हैं। जयंतिया जनजाति का निवास जयंतिया हिल्स पर है। यहाँ की लोक कथाओं में मिथक का स्वरूप देखने को मिलता है। असम और मेघालय की सामाजिक संरचना में प्रचलित साहित्य में मिथक की प्रचुरता देखने को मिलती है। यह समाज प्राकृतिक संसाधनों के अधिक निकट रहा है जिसके चलते साहित्य में परंपराओं के स्वरूप में मिथकों का विकास होता चला गया। पूर्वोत्तर भारत की सामाजिक संरचना पर नदी, पर्वत, वन्यजीव एवं प्राकृतिक संरचना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

पूर्वोत्तर भारत के अधिकतम निवासी प्रकृति के बीच में रहते हैं जिसके कारण बनी धारणाओं में विभिन्न मिथक स्थापित होते चले गए है। लोक परंपराएँ ही लोक साहित्य की आधारशिला होती हैं। माना जाता है कि परंपरा जीवन का अभिन्न अंग होती हैं। समाज और मनुष्य को अनुशासित व सभ्य बनाने के लिए परंपराओं की आवश्यकता होती है। परम्पराओं के मिथक बनाने की प्रक्रिया भी इसी प्रकार होती है। उदाहरण के रूप में असमिया समाज में पुत्र जन्म के समय एक विचित्र एवं रोचक लोक परंपरा प्रचलित है जिसके तहत प्रसूति–कक्षा के भीतर एक बड़े पीढ़े पर नया गमछा बिछाकर उस पर जल से पूर्ण घट रखा जाता है। घट के ऊपर आम्र–पल्लव रखा जाता है। पास में ही एक पात्र में चावल, तेल, हल्दी, तामूल–पान तथा द्रव्य–दक्षिणा रख दिया जाता है। पीढ़े के ऊपर एक सफ़ेद कागज तथा दवात में कलम डालकर रख दिया जाता है। माँ बच्चे को

रातभर लेकर बैठी रहती है। इस परंपरा के पीछे लोगों का विश्वास है कि अदृश्य रूप में उस समय भगवान आकर कागज पर लिख जाते हैं। उसी कागज को दूसरे दिन पंडित को जन्मकुंडली बनाने के लिए दे दिया जाता है। समाज में प्रचलित यह परंपरा समकालीन संदर्भ में मिथक के रूप में भी देखी जा सकती है। मिथक और परंपराओं के बीच कम फासला होता है। इसका निर्धारण करना अत्यंत कठिन कार्य है कि मिथक और परंपरा में मिथक क्या है और परंपरा क्या।

धार्मिक विश्वास का आशय है अलौकिक शक्तियों में विश्वास इस दृष्टि से देश की जनजातियों में धार्मिक विश्वास एक समान नहीं है। दरमिक विश्वास और मिथक का प्रचलन समाज के विकास के साथ होता गया है। आज पूर्वोत्तर में जो धार्मिक विश्वास प्रचलित है उनके विविध रूप निम्नलिखित हैं–

**जीववाद–** यह एक सार्वजनिक विशेषता है उन लोगों में सभी स्थान जीवात्माओं के स्थान हैं। जानवरों, पौधों, वृक्षों, तालाबों, नदियों, पत्थर, पहाड़ सभी में जीव का निवास स्थान है। मृतक भी इसके अपवाद नहीं हैं क्योंकि ये आत्मा के रूप में रहते हैं या स्तनोन के रूप में उसकी पुनः प्राप्ति होती है। मध्य भारत में संन्यास, मुंडा एवं अपने मृतक की आत्मा की उपस्थिति में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार बीमारी अकाल, सूखा, पानी की कमी, जमीन में कम अन्न होना अधिक मृत्यु आदि तभी होता हैं जब अलौकिक प्राणी या बुरी आत्माओं की यथोचित पुजा नहीं की जाती एवं समय पर बली नहीं दी जाती।

**प्रकृतिवाद–** आदिवासियों का पूरा जीवन प्रकृति पर आधारित है। स्वभाव से कृतरा होने के कारण ये वनवासी प्रकृति के प्रत्येक उपादान के प्रति कृतज्ञता समर्पित करते हैं। हरे–भरे वृक्ष जीवन में हरियाली, काले–काले मेघ जल से ..., सूर्य अपने प्रकाश से नींद दूर करता है, चंद्रमा शीतल किरणों से उष्णता को शांत करता है, नदियाँ जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। धरती, कृषि, फल–फूल देकर भूख शांत करती है, पशु–पक्षी नृत्य, गान कला की शिक्षा देते हैं, पर्वत नवोल्लास भरते हैं। सूर्यपूजा, चंद्रपूजा, वृक्षपूजा, पशु–पक्षी वंदना, पर्वत आराधना, धरती स्तुति नक्षत्रों के दर्शन जलाशयों के प्रति श्रद्धा समस्त आदिवासी समाज में प्रचलित है। सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में प्रकृति देवी की अर्चना अनिवार्य मानी गई है। समाज ने जो अपने उपयोग के लिए उचित माना उसका प्रयोग अपन बिम्ब रचने में सहायक सिद्ध होते है। पूर्वोत्तर भारत के समाज की निकटता प्रकृति से अधिक होने के कारण यह पूरा समाज प्रकृतिवाद के प्रति समर्पित दिखाई देता है।

पुराने वृक्षों में देवी–देवताओं का निवास मानकर पूजा जाता है। पुराने तालाबों, गहरे जल प्रवाहों में आधी तूफान में भूत–प्रेतादि का विश्राम स्थान माना जाता है। इनमें निष्ठा एवं समय–समय पर पूजा करना आवश्यक माना गया है। इनमें यह दृढ़ आस्था है कि विपत्ति के क्षणों में ये देवता भूत–प्रेत आदि रक्षा करते

है और प्रसन्न होकर सुख–समृद्धि का वरदान देते हैं लेकिन अप्रसन्न होने पर ये अद्भुत शक्तियाँ विनाश के दृश्य उपस्थित करने में तनिक नहीं हिचकती।

**टोटमवाद एवं निषेध**– आज तक जीवित प्राचीन जनजातियों की लगभग सार्वभौम विशेषता यह है कि लोगों ने अपने काबिलों के प्रदेशों के नाम पशुओं या पेड़–पौधों के नाम रखे। इस प्रकार जानवरों या पौधों के नाम रखने की प्रथा प्रतीक पूजावाद ओअमिज़्म या टोटमवाद कही जाती है। टोटम शब्द अमेरिका की अजीववा जनजाति की बोली के एक शब्द के आधार पर बना है। इसका अर्थ है प्रतीक या कबीले का परिचय चिह्न।

जनजाति में सम्मिलित प्रत्येक कबीले का संबंध किसी पशु या पौधे से होता है जो उसका प्रतीक चिह्न टोटम कहलाता है। कबीले के सदस्य अपने को टोटम जैसा और उसका वंशज मानते हैं। टोटमवाद के साथ कुछ निषेध और निश्चित प्रतिबंध भी जुड़े होते हैं।

आदिवासियों के गोत्र चिह्नों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव किस प्रकार  अपने आसपास के वातावरण से प्रभावित होता है तथा किन–किन रूपों में वह उन पदार्थों पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, कीट–पतंगों, पर्वत, तालाबों एवं विशिष्ट पल्लव–फलों से आतंकित प्रभावित और अभिभूत होता है जिनके बीच वह विचरण करता है तथा जिनसे वह निरंतर उपकृत होता रहता है।

गोत्र चिह्नों के प्रति जो इन अरण्य मानव में स्नेह–प्रीति एवं आदर कि भावना के साथ भय है उसका भी कुछ कारण है। आदि मानव ने अज्ञानवश कई अंधविश्वासों को अपनाया उन्हें विकसित किया और उनके आधार पर कई ऐसी मान्यताओं की और आकृष्ट हुआ जिनमें वास्तविक तथ्य कुछ भी नहीं है लेकिन भय आशंका आदि मनोविकार अवश्य विद्यमान है। इसके बावजूद यह मानना उचित है कि गोत्र चिह्नों के कारण सैकड़ों अन्य पशु विनाश से बचे और हजारों पेड़–पौधे कुठारा से यह भी स्पष्ट होता है कि आदिवासी बड़े कृतज्ञ होते है और अपने उपकारी सरंक्षक कल्याणकारी के प्रति अधिक श्रद्धा प्रदर्शित करते है कि उसे देवता के रूप में मानने लगते हैं। गोत्र चिह्नों को स्वीकृति में कृतज्ञता एवं भय दोनों का एकीकरण स्वीकार किया गया है।

आदिकाल का मानव जब अपने वंश कि लड़ी को लेकर बैठता था तो पीछे की तरफ ढूँढ़ते–ढूँढ़ते कई जनजातियां सूर्य–चंद्र तक पहुँच जाती थीं। कोई अपना उदभव सूर्यवंशी या चंद्रवंशी कह देती थी कोई तो किसी वृक्ष को या पशु–पक्षी को वंश का आदि–प्रवर्तक कल्पित कर लेती थी। पूर्वोत्तर भारत या समाज में लोक का जो बिम्ब या गोत्र का निर्माण हुआ वह प्राकृतिक संरचना से ही प्रेरित एवं ग्रहण किए प्रतीत होते हैं।

आदिवासियों में हजारों गोत्र चिह्न हैं–

शेर, मगर, कछुआ, बंदर, रीछ, मछ्ली, चुहिया, गिलहरी, बगुला, हंस, सुअर

सांड, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, शैमल, पीपल, साल, आम आदि के पेड़ मोर नेवला, साँप, मृग, सेही, चीता, बकरा, नदी आदि।

**निषेध**– अंग्रेजी में टैबू अमुक कापेन करना कुछ न खाना आदि समाज में अनिवार्य रूप में मान्य है।

- गोत्र चिह्न वाले पशु–पक्षियों का मांस खाना वर्जित।
- गोत्र चिह्नों का अनादर करना अनुचित माना जाता है।
- देव मंदिरों के पास के पेड़ को काटने पर प्रतिबंध।
- एक ही गोत्र में विवाह वर्जित माना जाता है।
- टोटम के पशु–पक्षी की मृत्यु होने पर संबंधित जनजाति को अपने सगे संबंधी की तरह शोक मानना और शव को विधिवत जमीन में दफनाना होता है।
- टोटम संबंधी पशु–पक्षी रक्षक होते हैं। उनके प्रति अनास्था का भाव व्यक्त नहीं किया जा सकता।
- टोटम चिह्नों को शरीर के विभिन्न अंगों पर गुदवाना आपकी धार्मिकता का प्रतीक होता है।
- गोत्र चिह्न को स्मरण किए विना मदिरापान वर्जित माना जाता रहा है।
- धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव, नृत्य आदि के समय गोत्र चिह्नों की अवहेलना करना अनुचित माना जाता है।
- टोटम संबंधी वृक्ष, पुष्प, लता आदि का काटना अनुचित होता है।
- जंगल में भ्रमण करते समय गोत्र चिह्नों के प्रति पूर्वज के लिए वंदना करनी चाहिए किसी भी दशा में तिरस्कृत नहीं करना चाहिए ।

जनजातियों का विश्वास है कि निषेध का उल्लंघन करने से उन लोगों पर कोई भयानक विपत्ति आ सकती है। इस तरह निषेध एवं दूसरे प्रकार के धार्मिक विश्वास है जो किसी विश्वास की नकारात्मक प्रथा हैं।

**जादू**– धर्म के वरावर महत्व रखता है

**पूर्वज पूजा**– जनजातियों के लिए पूर्वजों की क्रियाएँ वहुत महत्वपूर्ण हैं, उनके धार्मिक विश्वासों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य की शक्ति एवं पहुँच नियंत्रित व सीमित है, लेकिन पूर्वज पूजा द्वारा वह उसको प्राप्त कर लेता है।

**बहुदेववाद**– वनवासियों में मनोकामना पूर्ति की आकांक्षा ने देवी–देवताओं की मान्यताओं को प्रेरित किया है। फलस्वरूप समयानुकूल कई नए देवता आदिवासी समाज में श्रद्धा के पात्र बने कई देवताओं के प्रति आस्था एवं विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं– सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, धरती, डांगरिया वावा, मनसा नारायणदेव आदि।

**आदिवासी लोककथाएँ**– ये कथाएँ आदिवासियों के सुख–दुख प्रदर्शित करती है इनके सामाजिक संगठन की प्राचीन रूप–रेखा प्रस्तुत करती है तथा

धार्मिक विश्वासों का विस्तृत इतिहास बताती है। ये कथाएँ कौतुहल से परिपूर्ण हैं क्योंकि चमत्कार इन जनजातियों को अधिक प्रिय है। सतत साहचर्या के कारण वृक्ष–पुष्प, पशु–पक्षी, नदी–नाले, छोड़ बड़े पर्वत इन कथाओं के अंग बन गए हैं। बड़े–बड़े वृक्ष इन लोगों के साथ नाचते–गाते हैं, विभिन्न रूपरेखा के पशु–पक्षी इनके साथ भोजन करते हैं और सुख–दुख की घड़ियों में साथी बनते हैं। चील संदेश देती है, कबूतर मधुर गीत सुनता है, काग भविष्य का संकेत करता है।

## संदर्भ


- उपाध्याय, कृष्णदेव, भारत में लोक साहित्य, साहित्य भवन, इलाहाबाद, वर्ष–1998
- उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, वर्ष–1995
- उप्रेती, कुंदनलाल, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, वर्ष–1971
- कौशिक, जय नारायण, लोक साहित्य और संस्कृति–दिग्दर्शन, अविराम प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2008
- गुप्ता, रमणिका, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, वर्ष–2009
- दुबे, सत्य नारायण, लोक साहित्य की रूपरेखा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2003
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–1989
- प्रसाद, माता, मनोरम भूमि अरूणाचल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–1995
- भागवत, दुर्गा, भारतीय लोक साहित्य की रूपरेखा, भूमिका प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–1991
- शर्मा, कृष्णदेव, लोक साहित्य, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–1992
- सत्येन्द्र, लोक साहित्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, वर्ष–1962
- सिन्हा, विद्या, भारतीय लोक साहित्य परंपरा एवं परिदृश्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–1997